सद्‌गुरू–सन्देश
श्रीश्रीमाँ सर्वाणी

दूर रहनेवाले निकट आते हैं, निकट रहनेवाले दूर चले जाते हैं, परन्तु जो चिरन्तन हैं, चिरन्तन सत्ता हैं, वह दूर भी नहीं जाता, निकट भी नहीं आता हैं; वह चिरन्तन हो कर हृदय के गभीर में रहता हैं। इसके संग ही चलता है नित्य विलास।

स्थितप्रज्ञ ही सद्‌गुरु को पहचान सकता है, उपलब्धि कर सकता है, कारण, माया–प्रपंच का पर्दा उनसब में अपसारित हो गया है। इसलिए स्थितप्रज्ञजनों के अन्तर में विचार–विकल्प की भावना नहीं रहती है; उस की भावना चिरन्तन ध्रुव प्रज्ञानमय होती है। किसी भी कारण सद्‌गुरु के कर्म का यदि शिष्य विचार या दोषारोपण करे तो यह समझना होगा की वे सद्‌गुरु को भगवत् स्वरूप नहीं मानते हैं। यथा :–एक तपस्वी बहुत दिनों से विन्ध्यवासिनी पीठ में तपरत था एवं जब उनका सिद्धिलाभ करने का समय आया तब अचानक उसके गुरुदेव वहाँ प्रकट हो गए। गुरुदेव गृहस्थ थे, इसलिए शिष्य ने सोचा कि, ''मेरा संसार वासना नहीं है, किन्तु गुरुदेव का है।'' इस कारण गुरु के प्रति उसने अवज्ञा का भाव प्रदर्शित किया। मगर गुरुदेव सिद्धपुरुष थे। वे शिष्य के मन की अवस्था को ज्ञात कर बोले–''अच्छा, इस जनम में तुम्हारा और कुछ अधिक नहीं होनेवाला है। अब तुमको गृही बनना पड़ेगा। मगर तुम्हारा साधनलब्ध संचित धन नष्ट नहीं होगा।''

जो अन्तर में चित् ज्योति प्रज्ज्वलित कर देता है एवं उस ज्योति के आलोक से सत्ता के निजबोध की सहायता द्वारा उपलब्धि भी प्रदान करने में सक्षम होता हैं, वे ही श्रेष्ठ एवं प्रणम्य हैं–वे ही सद्‌गुरुरूपी स्वयं भगवान हैं। जो सद्‌गुरु एवं अखण्ड मातृशक्ति स्वरूपा ''माँ'' हैं, वे प्रणम्य से प्रणम्या होती हैं–उनकी जो अवमानना करता है, उनके कर्मों का जो विचार करता है, उसका अशेष दुर्गतिपुर्ण कर्मफल संचित होता है। सद्‌गुरु एवं माँ एक शरीर में विराजित है ऐसा ब्रह्मांड में विरल से विरलतम है। इनकी सर्वकर्म साधन का परिणाम अनन्त कल्याणमूलक होता हैं–माँ की कृपा बिना तैत्तीसकोटि देवता की भी सद्‌गति नहीं होती है। इसीलिए ''माँ'' परम पूज्या विश्वजगत् वरेण्या, विश्वप्रसवित्री विश्वजननी हैं।

विश्वजननी माँ होती है अखण्ड ज्योतिर्मयी। फिर भी वे अनन्त दयामयी हैं–जब वे धराधाम में अवतीर्ण होती हैं, तब वे सत्–असत् दोनों को ही अपने पार्श्व में स्थान देती है। उनकी सान्निध्य में उनके आलोक से निकृष्ट को उत्कृष्ट रुप में दर्शन होता है। वे उत्कृष्ट को जैसे प्रेम से आबद्ध करती हैं, निकृष्ट को भी वैसे ही प्रेम से बाँध लेती हैं परन्तु उनकी ज्योति से उद्‌भासित होकर निकृष्ट जब जगत् में उत्कृष्ट का सम्मानलाभ करते रहते है तब, ''वे जो निकृष्ट थे, ज्योतिर्मयी की आलोक से ही उत्कृष्ट हुए हैं'', उन्हें यह विस्मृत हो जाता है–यह है अविद्याजनित अहंकार का स्वभाव। ज्योतिर्मयी माँ जितने क्षण उसको धारण करके रखती है उतने क्षण वह उत्कृष्ट दिखाई देता है। फिर, जब ज्योतिर्मयी स्वयं के प्रकाश को संवरित कर अपने हृदय के अन्त:पुर में निमग्न कर लेती है, जो उनकी पक्ष में स्वाभाविक है, तब निकृष्ट समझता है कि उसका प्राधान्य और कायम नहीं रहेगा, उत्कृष्ट के रूप में, तभी वह अपने अन्तरस्थित प्रसुप्त अविद्याजनित स्वभाव की सहायता से किसी भी तरह ज्योतिर्मयी को फिर से अपने वश में लाना चाहता है, स्वयं के अहंकार को परिपुष्ट करने के लिए–परन्तु यह होना असम्भव है! दिव्य जननी माँ जगत् कल्याण करने के लिए आती हैं–वे उत्कृष्ट व निकृष्ट के मध्य समानरूप से विद्या वितरण करती हैं। सत्–असत् निर्विचार वे महा उदारता से मातृ रुप में सन्तानों के मध्य रहती है–उसको विशुद्ध प्रेम बिना कोई पकड़कर रख नहीं सकता। उनको हृदय में धारणकर रख सकने से ही सकल साधना सिद्ध होती है। वे सिर्फ ध्यानमूर्ति ही नहीं हैं, वे अन्तर्यामी महाशक्तिरूपिणी महाप्राण हैं। उनका स्पन्दन ही सबों के हृदय में स्पन्दित होता है। विशुद्ध प्रेम परमब्रह्म की दिव्य अतुल शक्ति व अमृतमय विभूति है। हृदय विशुद्ध न होने पर्यन्त सत्ता की वक्षपर उसका स्फुरण होना सम्भव नहीं है। जितने क्षण वाह्यिक विषयादि मन में चंचलता की सृष्टि करते हैं उतने क्षण अन्तर विशुद्धता

से पूर्ण नहीं होता है एवं भगवत् कृपालाभ करने में सक्षम नहीं होता है। इस कारण महाजनगण कहते हैं, ''मन मारके योगी शिव बनता है।''–ध्यानसिद्ध न होने पर्यन्त साधक मन की सीमा का अतिक्रमण नहीं कर पाता, मन की सीमा का अतिक्रमण न होने से सत्ता की वक्षपर विशुद्ध चेतना के आकाश का प्रतिफलन नहीं होता। (इस कारण ही योगी के क्षेत्र में ब्रह्मविद्या का अवलम्बन-साधन।) जब मन में वाह्यिक विषयोंका छाप नहीं पड़ता, मन शुन्य मार्ग पर सुषुम्ना पथ में स्थिर अटल अवस्था में अवस्थान करता है, ऐसी अवस्था जब योगी के स्वभाव में परिणत हो जाता है, तभी भगवत् कृपालाभ करने के लिए सत्ता का आधार उपयुक्त होता है। यह अवस्था ही ''प्रकृत विश्वास'' की अवस्था है। साधक के पक्ष में लक्ष्य से उपलक्ष्य जब प्रधान हो उठता तब वह विश्वास के आसनच्युत हो जाता है। इसलिए महात्मा कबीर साहब ने कहा, ''खोजी होय तो तुरन्त मिल जाऊ एक पल ही की तलाश में, कहे कबीर सुनो भाई साधो मैं हूँ तेरे विश्वास में ॥''–

सद्गुरू का कर्म अद्भुत आश्चर्यजनक एवं अलौकिक है! सद्गुरू की प्रतिज्ञा–

''मेरे मार्ग पर पैर रखकर तो देख, तेरे सब मार्ग न खोल दूँ तो कहना ॥ १ ॥
मेरे लिए खर्च करके तो देख, कुबेर के भंडार न खोल दूँ तो कहना ॥ २ ॥
मेरे कड़वे वचन सुनकर तो देख, कृपा न बरसे तो कहना ॥ ३ ॥
मेरी तरफ आके तो देख, तेरा ध्यान न रखूँ तो कहना ॥ ४ ॥
मेरी बात लोगों से करके तो देख, तुझे मूल्यवान न बना दूँ तो कहना ॥ ५ ॥
मेरे चरित्र का मनन करके तो देख, ज्ञान के मोती तुझ में न भर दूँ तो कहना ॥ ६ ॥
मुझे अपना मददगार बना के तो देख, तुम्हें सबकी गुलामी से न छुड़ा दूँ तो कहना ॥ ७ ॥
मेरे लिए आँसू बहा के तो देख, तेरे जीवन में आनंद के सागर न बहा दूँ तो कहना ॥ ८ ॥
मेरे लिए कुछ बनके तो देख, तुझे कीमती न बनाँ दूँ तो कहना ॥ ९ ॥
मेरे मार्ग पर निकल कर तो देख, तुझे शान्तिदूत न बना दूँ तो कहना ॥ १० ॥
स्वयं को न्यौछावर करके तो देख, तुझे मशहूर न करा दूँ तो कहना ॥ ११ ॥
मेरा कीर्तन करके तो देख, जगत् का विस्मरण न करा दूँ तो कहना ॥ १२ ॥
तू मेरा बन कर तो देख, हर एक तो तेरा न बना दूँ तो कहना ॥ १३ ॥

॥ हरि ॐ तत् सत् ॥

–हिन्दी अनुवादः मातृचरणाश्रित श्रीबैजनाथ पाठक

गुरूतत्व

गुरू एक तत्व है
कोई इंसान नहीं है
इस गूढ़ रहस्य को समझना
कोई आसान काम नहीं है।
दिग-दिगन्त परिव्याप्त
गुरूकी अमृतवाणी को
बिन श्रद्धा घारण कर पाना
कोई सहज साध्य नहीं है।
गुरू एक तत्व है ...
दिनकर की तरह प्रज्ज्वलित
गुरू के आभामण्डल से
अन्तर्मन आलोकित कर पाना
बिन एकाग्रता आसान नहीं है।
गुरू एक तत्व है ...
करूणा-प्रेम से प्रफुल्लित
गुरू का कोमल मन
कृपा-दृष्टि बरसाते लोचन
बिन प्रज्ञाचक्षु अनुभूत नहीं है।
गुरू एक तत्व है ...
अति प्रेरक सत्संग गुरूका
आनन्द का अमृत अर्णव है
सौभाग्य बिना अवगाहन
लेकिन इसमे सुलभ नही है।
गुरू एक तत्व है ...
सच्चे सेवक वही बनेंगे
जिनका मन परमार्थ भरा हो
और अकिंचन वही बनेंगे
जिसने अपना अभिमान त्यजा हो
शरणागति अहेतुकी भक्ति के बिन
होता बेड़ा पार नहीं है।
गुरू एक तत्व है ...

श्रीश्रीमाँ की कृपापात्र
–श्रीमती सुशिला सेठिया